Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 2 | Issue 4 | (Oct – Dec 2025)

अवतारवाद और कर्मचक्र

प्रो. अर्चना दुबे
अध्यक्ष, भारतीय भाषा विद्याशाखा, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर, भोपाल

सारांश

अवतारवाद और कर्मचक्र भारतीय दार्शनिक परंपरा के दो ऐसे सिद्धांत हैं जो मानव जीवन, धर्म और ईश्वर के संबंध को स्पष्ट करते हैं। जब अधर्म की वृद्धि होती है और मानवता संकट में पड़ती है, तब ईश्वर अवतार लेकर धर्म की पुनर्स्थापना करते हैं यह अवतारवाद का मूल है। श्रीराम के अवतार में यह सिद्धांत पूर्ण रूप से प्रत्यक्ष होता है। उन्होंने करुणा, मर्यादा, त्याग, सत्य और धर्म के माध्यम से समाज में आदर्श की स्थापना की। साथ ही, उनके जीवन में कर्मचक्र का सिद्धांत भी समान रूप से प्रकट होता है- जैसे श्रवण कुमार के श्राप से दशरथ का पुत्र-वियोग, मंथरा की कुमति से वनवास, और रावण के विनाश हेतु देवविधान। राम के प्रत्येक कर्म से यह स्पष्ट होता है कि ईश्वर भी मानव रूप में कर्म के विधान से बंधे रहते हैं, ताकि मानव जाति को कर्म के महत्त्व का बोध हो सके। इस प्रकार अवतारवाद और कर्मचक्र दोनों मिलकर यह दर्शाते हैं कि ईश्वर का अवतरण केवल दैवी लीला नहीं, बल्कि लोककल्याण और धर्मसंस्थापन की दिव्य योजना है।

मूल शब्द: श्रीराम, अवतारवाद, कर्मचक्र, करुणा, धर्मस्थापना

संसार के अलग-अलग धर्मों में अवतारवाद को अत्यंत आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। भारत के साथ-साथ अन्य देशों में भी अवतारवाद की मान्यता है। विशेष रूप से भारतवर्ष में हिंदू धर्म में अवतारवाद की विशेष प्रतिष्ठा है। जैसा कि हिंदू धर्म में माना जाता है कि धर्म के स्थान पर अधर्म की प्रबलता होने पर भगवान का अवतार होता है। सज्जनों के उद्धार और दुर्जनों के विनाश, अधर्म के नाश और धर्म की स्थापना के लिए भगवान के अवतार धारण करने का प्रयोजन गीता के इस श्लोक से भी स्पष्ट होता है-

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे।।"

वैष्णव धर्म में अवतार का तथ्य विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण माना जाता है। कर्मचक्र की बात करें तो विष्णु के दशावतारों में राम और श्रीकृष्ण के अवतार अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। एक ने कर्मचक्र को सिद्ध किया, जिसका उल्लेख रामायण की उस कहानी में प्राप्त होता है, जिसमें राजा दशरथ के बाण से श्रवण कुमार की मृत्यु होने पर श्रवण कुमार के माता-पिता ने राजा दशरथ को दिए गए पुत्र-वियोग के श्राप से श्रीराम को वनवास मिला। जबकि द्वितीय ने कर्म की मीमांसा कर कर्म का उपदेश दिया-

"युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।

अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते।।"

राम अवतार होकर भी लोक के अधिक निकट हैं। उनका अपने युग में अवतार लेना लोकहित के प्रयोजन से ही था। त्रेता युग में जब राक्षस जाति के अत्याचारों से साधु-संत त्रस्त थे, समस्त पृथ्वी आतंकित होकर काँप रही थी, असत प्रवृत्तियों का भंडार रावण और उसकी सेना अत्याचार एवं प्रजापीड़न करती थी। ऐसे में राम उच्चतम आदर्श के प्रतीक बनकर एक ओर तो अनाचारी, अत्याचारी राक्षस जाति का नाश करते हैं, तो दूसरी ओर लोक

के समक्ष धैर्य, शील, साहस, मर्यादा, त्याग, सत्य, न्याय, कर्तव्य-पालन और समता का आदर्श भी स्थापित करते हैं।

परब्रह्म होकर भी वे मानव अधिक हैं। मानव के धैर्यपूर्वक सुख-दुख के प्रति समान भाव रखते हुए जीवन-यापन का मार्ग अपनाने हेतु वे स्वयं ऐसा जीवन धारण करते हैं, जिसमें दुःख हैं, वियोग है, कठिनाइयाँ हैं, निराशा है, आँसू हैं, संघर्ष हैं, ताप (दैहिक, दैविक, भौतिक) हैं और इन तापों पर विजय प्राप्त करके एक समृद्धशाली, सर्वसुख-संपन्न, सर्वजनोपयोगी, भयविहीन आदर्श 'रामराज्य' की स्थापना का संकल्प भी है। वे अपने जीवन के माध्यम से कर्मयोग की प्रेरणा देते हैं। साक्षात नारायण, जिनके बारे में शिवजी कहते हैं-

"केहिबिधि दरसन होइ गुप्तरूप अवतरेउ प्रभु गए जान सब कोइ।।"

ऐसे नारायण के अवतार दाशरथि राम के जीवन को जानकर कर्मचक्र और अवतार के सहसंबंध को जाना जा सकता है। कर्मचक्र का सिद्धांत यह बताता है कि हमारे कर्म हमारे वर्तमान जीवन और भावी जीवन के अनुभवों का निर्धारण करते हैं। कर्मचक्र में क्रिया और प्रतिक्रिया का नियम कार्य करता है और हमारे द्वारा किए गए हर कार्य का एक परिणाम होता है, जो हमारे अगले जीवन या अगले अनुभव को प्रभावित करता है। राम का अवतरण दानवों के विनाशार्थ एवं सज्जनों के पालनार्थ हुआ था-

"तेहि अवसर भंजन महिभारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा।।"

राम का जन्म असत् पर सत् की विजय और मानवता की रक्षा के द्वारा मानव जाति में इस अनुभव को स्थापित करता है कि बुराई पर अच्छाई की विजय निश्चित है। किंतु 'राम' के 'राम' बनने में राम द्वारा गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करना, शिक्षा के उन समस्त कौशलों को प्राप्त करना, जिससे दैत्यों का नाश कर प्रजा की रक्षा हो सके, पिता के वचन का पालन कर राज-पाट त्यागकर तपस्वी का वेश धारण करके भीषण वन में चले जाना, इस अनुभव को जीवन में लाता है कि पिता का स्थान सर्वोपरि है। उनके वचन का निर्वाह करना प्रत्येक पुत्र का धर्म है। इस धर्म का परिणाम है दैत्यों का नाश। यदि राम वन नहीं जाते तो रावण (अधर्म) का संहार नहीं होता-

"पिता बचन तजि राज उदासी। दंडक बन बिचरत अबिनासी।।"

प्रभु का श्रीराम के रूप में पृथ्वी पर अवतार लेना सप्रयोजन था, यह तत्कालीन युग की माँग थी। राक्षस जाति के अत्याचारों से त्रस्त मानवता के कष्टों के निवारण एवं पूर्व से चली आ रही कुरीतियों को समाप्त कर भारतीय समाज में आदर्श की स्थापना करना, संतों की रक्षा एवं भारतीय संस्कृति के उत्थान के निमित्त श्रीराम का जन्म हुआ। जीव और ईश्वर का एकीकरण हुआ, तब राम जन्म लेते हैं दस इन्द्रियों वाले शरीर रूप में। सृष्टि राम का विस्तार है; ब्रह्माण्ड का सृजन, संचालन और विनाश उन्हीं का अव्यक्त, अगोचर, अविकारी और त्रिगुणातीत रूप है, जिन्हें "नेति-नेति" कहा गया है-

"श्रुति, पुरान, सद्ग्रन्थ कहाही।

रघुपति भगति बिना सुख नाहीं।।"

वर्षों तक ऋषि-मुनियों, दार्शनिकों, मनीषियों, चिंतकों, विद्वानों और मानव वंश के पूर्वजों की तपस्या और अनुभव के आधार पर मानवीकरण के लिए जितने भी सिद्धांत बनाए गए, वे स्वयंसिद्ध और प्रामाणिक हैं, और इन सबका संकलित नाम ही 'राम' है चैतन्य रूप में व्याप्त चेतना। इसलिए तुलसीदास कहते हैं "सिया राममय सब जग जानी।"

ब्रह्म रूप में व्याप्त राम के समक्ष संपूर्ण बाधाएँ यद्यपि अर्थहीन हैं, फिर भी राम शोकग्रस्त होते हैं, विकल होते हैं क्योंकि वे मानव रूप में हैं। वे संतप्त मानवता को यह प्रमाण देते हैं कि भाग्यरेखा की मर्यादा का निर्वाह मानव को करना पड़ता है। राम को भी माता-पिता और अन्य परिवारजनों को छोड़कर वन जाना पड़ा; पिता दशरथ के स्थायी वियोग में रहना पड़ा, पत्नी सीता के अपहरण और भ्राता लक्ष्मण को शक्ति लगने से होने वाली अचेतावस्था को सहना पड़ा। भ्राता लक्ष्मण के वियोग की आशंका से व्यथित राम अथवा रावण से युद्ध में सफल होने के पश्चात सीता का त्याग जनमानस को यह संदेश देने के लिए है कि मानव जीवन में सुख-दुख की स्थितियाँ नित्य हैं, और इन स्थितियों में सुख-दुख की अनुभूतियाँ भी नित्य हैं-

व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर।

लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर।।

तब लगि लेइ आयउ हनुमाना।

अनुज देखि प्रभु अतिदुख माना।।

लक्ष्मण जी को युद्ध में शक्ति लगने पर श्रीरामचन्द्र मानुष भाव का आश्रयण कर शोक करने लगते हैं-

बहुविधि सोचत सोच विमोचन।

स्त्रवत सलिल राजिवदल लोचन।।

उमा एक अखण्ड रघुराई।

नर गति भगति कृपालु देखाई।।

आँसू बहाते हुए वे मनुष्य की दशा दिखा रहे हैं। संपूर्ण पृथ्वी का भार उठाने वाले लक्ष्मण जी को माया शक्ति से कुछ नहीं हो सकता-

जगदाधार अनंत किमि उठइ चले खिसिआइ।।

किन्तु फिर भी लक्ष्मण शक्ति से अचेत हो जाते हैं। भाई से अगाध स्नेह करने वाले श्रीराम प्रलाप करते हैं और कहते हैं कि पुत्र, धन, स्त्री, घर और कुटुम्बी संसार में बार-बार मिलते और बिछुड़ते हैं, किन्तु संसार में सगा भाई दोबारा नहीं मिलता। इन कथनों से वे मानव जाति को यह संदेश देते हैं कि कुटुम्ब में अन्य लोगों की अपेक्षा सहोदर प्रधान है। बड़े भाई के रूप में राम का जो आदर्श रूप है, छोटे भाई के रूप में लक्ष्मण का रूप भी उतना ही आदर्शमय है। राम के वनगमन के समय साथ जाने के लिए वे राम के चरण पकड़ लेते हैं, व्याकुल हो जाते हैं कि कहीं राम उन्हें छोड़कर अकेले ही वन में न चले जाएँ-

उदरून आवत प्रेम बस, गहे चरन अकुलाइ।

नाथ दास मैं स्वामि तुम्ह तजहु तौ कहा बसाइ।।

भाइयों का एक-दूसरे के प्रति ऐसा प्रेम और समर्पण 'आदर्श भ्रातृत्व' का उदाहरण समाज में स्थापित करता है। मानस के इस स्थल पर एक भाई की दूसरे भाई के प्रति केवल प्रेम और चिंता ही नहीं देखने को मिलती, अपितु भाई को खो देने की आशंका के साथ यह भाव भी है कि यदि इस युद्ध में लक्ष्मण को कुछ होता है, तो उनकी प्रजा (अयोध्यावासी) उनके बारे में क्या सोचेंगे-

जइहउँ अवध कवन मुँह लाइ।

नारि हेतु प्रिय बन्धु गँवाई।।

राजा के लिए प्रजा सर्वोपरि होनी चाहिए। उसका यह कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा के पालन-पोषण के साथ ही उनके समक्ष एक आदर्श मार्ग निर्मित करे, जिस पर प्रजा चले। लोक-परंपराओं में राम के होने का अर्थ समाज के प्रत्येक वर्ग में मर्यादा और आदर्श की स्थापना से है। लोक किस प्रकार उस आचार को अपनाकर मानव जीवन को श्रेष्ठ सिद्ध करे जो आचार श्रीराम का था क्योंकि राम एक व्यक्तित्व नहीं, एक विचारधारा हैं। एक शासक का रूप कैसा होना चाहिए, एक शिष्य, एक भाई, एक पुत्र, एक पति, एक पिता कैसा होना चाहिए यह हम श्रीराम से सीखते हैं।

वास्तव में नारायण के नर के रूप में जन्म लेने का उद्देश्य भी यही था, विशेष रूप से उस युग में जब पृथ्वी राक्षसों के अत्याचारों से काँप रही थी, समाज में जातिवाद, वर्गवाद, सम्प्रदायवाद का बोलबाला था, शासक वर्ग अपने शासक धर्म से च्युत हो चुका था। ऐसे में पथभ्रष्ट भारतीय समाज को मार्ग दिखाने वाले राजा राम भारतीय लोकपरंपरा में इतनी गहराई से रच-बस जाते हैं कि यदि उसमें से राम को हटा दिया जाए, तो भारतीय संस्कृति शून्य हो जाएगी। राजा के रूप में राम केवल दशरथ जी के पुत्र नहीं हैं, बल्कि अयोध्या के सभी निवासियों के पुत्र हैं। तुलसीदास जी कहते हैं-

चलत रामु लखि अवध अनाथा।

बिकल लोग सब लागे साथा।।

कृपासिंधु बहुविधि समुझावहिं।

फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं।।

अयोध्यावासियों का श्रीराम से ऐसा नाता है कि उनके बिना वे पलभर के लिए भी सुख नहीं पाते। इसलिए वे यह विचार करते हैं कि जहाँ श्रीराम रहेंगे, वहीं सारा समाज रहेगा-

सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं।

राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं।।

जहाँ रामु तहँ सबु समाजू।

बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू।।

प्रजा के दुख से दुखित होकर श्रीराम जब उनके जागने से पहले चले जाते हैं और प्रजा को जो संताप होता है, उसकी अभिव्यक्ति आज भी अवध के लोकगीतों में मिलती है-

कवने नरेस्वा कय देसवा उजड़ी गयें के करे।।

वनवास के मार्ग में जब सीता, राम और लक्ष्मण जी किसी गाँव से गुजर रहे हैं, तो कोई उनके लिए घड़ा भरकर पानी ले आता है, कोई खाने को कुछ ले आता है-

एक कलस भरि आनहिं पानी।

अँचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी।।

और गाँव की स्त्रियाँ सीता जी से पूछती हैं-

कोटि मनोज लजावनिहारे।

सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे।।

सुनि सनेहमय मंजुल बानी।

सकुचि सिय मन महुँ मुसुकानी।।

भारत की प्रायः सभी लोक-परंपराओं में राजा राम वह आदर्श रूप हैं जो समाज में समानता, प्रेम, विश्वास, आस्था, त्याग, बन्धुत्व और उपकार जैसे चिरंतन मानव मूल्यों की स्थापना करते हैं। रामचरितमानस में तुलसीदास जी राम के जिस लोकरक्षक स्वरूप की प्रतिष्ठा करते हैं, उस स्वरूप से उस समय लोक और धर्म दोनों की रक्षा हुई। मानस के माध्यम से भारतीय संस्कृति सुरक्षित बनी रही। उस समय की निराशाजनक परिस्थितियों में धर्म की स्थापना के लिए अवतार की अवधारणा और भी अधिक ग्राह्य हो जाती है।

रावण के अत्याचारों से त्रस्त देवगण विष्णु से परित्राण की याचना करते हैं और श्रीविष्णु शीघ्र ही राजा दशरथ के यहाँ अवतार लेने का आश्वासन देते हैं। कौशल्या प्रथमतः पूर्वजन्म की तपस्या के फल के अनुरूप चतुर्भुज विष्णु के दर्शन करती हैं और फिर अपनी इच्छानुसार अनुनयपूर्वक उन्हें नवजात शिशु के रूप में प्राप्त कर लेती हैं। राम के रूप में अवतरित विष्णु अनेक स्थलों पर ईश्वरत्व के दर्शन कराते हैं, जैसे अहिल्या उद्धार की घटना, धनुष-भंग, मारीच पराभव और जटायु की मुक्ति आदि अनेक प्रसंग। राम के अवतारी रूप से माता-पिता और प्रजा अनभिज्ञ हैं, इसलिए राजा दशरथ और प्रजा दोनों श्रीराम के राज्याभिषेक का सुखद स्वप्न संजो रहें हैं। किन्तु विष्णु के अवतार के प्रयोजन को निष्फल होता देखकर सरस्वती की सहायता से मंथरा की बुद्धि को भ्रष्ट कर, कैकेयी को मंथरा की प्रेरणा से अपने पूर्वयाचित वरदान में राम का वनवास माँगना निश्चित था।

किन्तु मानव जाति की रक्षा के निमित्त होने वाले वनवास के समानांतर जो दूसरी कथा हमारे सामने आती है, वह श्रवण कुमार के माता-पिता द्वारा दशरथ को दिए गए अभिशाप की है, जो कर्मचक्र को व्यक्त करती है। इस प्रकार यदि यह सत्य है कि राम को वनवास इसलिए हुआ कि श्रवण कुमार की मृत्यु के दोषी राजा दशरथ थे, जिसके कारण श्रवण कुमार के अंधे माता-पिता को पुत्र-वियोग सहना पड़ा, इसलिए उन्होंने राजा दशरथ को भी पुत्र-वियोग का श्राप दिया तो फिर त्रस्त मानवता को रावण और उसकी असुर जाति के अत्याचारों से मुक्त कराने के लिए पूर्वनियत देवविधान को क्या माना जाएगा?

विष्णु के अवतार श्रीराम मानव के कर्मों का विधान करने वाले हैं, परन्तु स्वयं कर्मचक्र से आवृत्त दिखाई पड़ते हैं जिसका एकमात्र प्रयोजन मानव जाति को यह बताना है कि कर्म का कर्मत्व और कर्मफल क्या है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं-

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।।

योग में आरूढ़ होने की इच्छा रखने वाले मननशील पुरुष के लिए योग की प्राप्ति में निष्काम भाव से कर्म करना ही हेतु कहा गया है और योगारूढ़ हो जाने पर उस पुरुष का जो सर्वसंकल्पों से रहित हो जाना है, वही कल्याण का कारण है। प्रभु श्रीराम योगारूढ़ पुरुष थे। पृथ्वी के भार को हरने हेतु वे जन्म लेते हैं-

हरिहउँ सकल भूमि गरूआई।

निर्भय होहू देव समुदाई।।

माता-पिता को सुखी हो, इसलिए बाल-लीला करते हैं-

कीजै शिशु लीला अति प्रिय शीला, यह सुख परम अनूपा।

सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना, होइ बालक सुरभूपा।।

नगरवासी जिस प्रकार सुख पाएँ, श्रीराम वैसी ही लीला करते हैं-

जेहि विधि सुखी होहिं पुर लोगा।

करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा।।

वेद पुरान सुनहिं मन लाई।

आप कहहिं अनुजन्ह समुझाई।।

नित्य प्रातःकाल उठकर माता-पिता और गुरु को मस्तक नवाकर आज्ञा माँगकर नगर का राज्यकार्य करते हैं-

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा।

मातु पिता गुरु नावहिं माथा।

आयसु माँगी करहिं पुर काजा।।

राक्षसों से यज्ञ की रक्षा कर, असुरों को जीतते हैं। मुनि विश्वामित्र विष्णु के अवतारी श्रीराम के लोकरक्षक रूप का उल्लेख करते हुए कहते हैं-

मख राखेउ सब साखि जगु।

जिते असुर संग्राम।।

जनकपुरी के निवासी भी उनका दर्शन करके सुखी हों, जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करें ऐसा विचार कर अपने भाई लक्ष्मण के साथ नगर के भ्रमण पर निकलते हैं और अपने दर्शन मात्र से नगरवासियों के दुखों को हर लेते हैं-

निरखि सहज सुन्दर दोउ भाई।

होहिं सुखी लोचन फल पाई।।

रघुकुल के राजपुत्र होते हुए भी प्रभु श्रीराम और उनके भ्राता लक्ष्मण अत्यंत शीलवान और विनम्र हैं। गुरु की आज्ञा उनके लिए सर्वोपरि है। वे गुरु की सेवा को अपना परम धर्म मानते हैं-

मुनिवर सयन कीन्ह तब जाई।

चले चरन चाप दोउ भाई।।

जिन्ह के चरन सरोरुह लागी।

करत विविध जप जोग बिरागी।।

तेइ दोउ बन्धु प्रेम जनु जीते।

गुरु पद कमल पलोटत प्रीते।।

करूणा मानव का सहज धर्म है। मनुष्य की प्रकृति में शील और सात्विकता का आदि संस्थापक यही मनोविकार है। जिन कर्मों से दूसरे के वास्तविक सुख का साधन और दुःख की निवृत्ति होती है, वे ही कर्म शुभ और सात्विक कहलाते हैं। कृपा या अनुग्रह से भी दूसरों के सुख की योजना की जाती है। प्रभु श्रीराम करूणानिधान और दीनदयालु के नाम से संसार में प्रसिद्ध हैं। वे श्राप से ग्रस्त शिलारूप अहिल्या को स्पर्श मात्र से श्रापमुक्त कर पुनः मानव रूप प्रदान करते हैं-

परसत पद पावन सोक नसावन, प्रगट भई तप पुंज सही।

देखत रघुनायक जन सुखदायक, सन्मुख होइ कर जोरि रही।।

देवलोक से नारद जी राम विवाह के पश्चात अत्यन्त विनम्रतापूर्वक अयोध्या आकर राम के अवतार लेने का प्रयोजन याद दिलाते हैं-

प्रभु जानत सब अन्तर्यामी, भक्त वत्सल विनती यह स्वामी।

जेहि हित लीन्ह मनुज अवतारा, नाथ ताहि अब करिह सँभारा।।

नारद के यह वचन एवं श्रीराम का सीताजी से पूर्व कथा का कारण अर्थात रावण को मारने हेतु अवतार लेने का वृत्तांत कहना तथा जानकी जी का देवताओं के हित के लिए राज्यत्याग कर वन की ओर चलने का प्रस्ताव संपूर्ण रामकथा का मूल है।

राम के अवतार और कर्मचक्र के संबंध का रहस्य भी इसी में अन्तर्निहित है। राम द्वारा राक्षसों का नाश किस प्रकार हो, इसके लिए मंथरा द्वारा कैकेयी को भरत के लिए अयोध्या का राजसिंहासन और राम के लिए वनवास माँगने का प्रस्ताव वास्तव में रावण के नाश के लिए राम के अवतार से जुड़ा हुआ है। किन्तु लोक में यह कथा मंथरा नामक दासी की षड्यंत्रकारी बुद्धि और उससे भ्रमित कैकेयी की कुमति से उत्पन्न दुखद प्रसंग के रूप में प्रसिद्ध है-

विपति बीजु बरषा ऋतु चेरी, भइ भुइँ कुमति कैकेई केरी।

पाइ कपट जलु अंकुर जामा, बर दोउ दल दुख फल परिनामा।।

संभवतः इसलिए लोक में श्रवण कुमार के माता-पिता द्वारा दशरथ को दिए गए पुत्र-वियोग के अभिशाप की कथा और कैकेयी की कुमति से उत्पन्न प्रभु राम और जानकी के वनवास की कथा प्रसिद्ध है। आज भी लोक में मंथरा को परिवार में दरार डालने वाली और षड्यंत्र रचने वाली के रूप में जाना जाता है। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न आदर्श भाइयों के रूप में एवं हनुमान सबसे उत्तम सेवक के रूप में लोक-श्रद्धा के पात्र हैं। वहीं दूसरी ओर जनकदुलारी सीता केवल राजा जनक की ही नहीं, बल्कि जन-जन की दुलारी हैं। उनके रूप, गुण, शील और पतिव्रत्य का बखान बड़े श्रद्धा के साथ किया जाता है।

रावण द्वारा कपट से उनका हरण और उनकी अग्नि परीक्षा, लव-कुश का जन्म आदि प्रसंग जनमानस के लिए अत्यंत दुखद हैं, जिनका उल्लेख लोकगीतों में बड़े ही मार्मिक शब्दों में किया जाता है-

मुनि पुत्री मैं जनक की, राम प्रिया जग जान।

त्यागन हेतु न जान कछु, विधि गति अति बलवान।।

इस प्रकार रामकथा में दो कथाएँ समानांतर चलती हैं।

पहली वह, जो पहले से निश्चित थी, जिसमें प्रभु का अवतार पृथ्वी पर रघुवंश में होना था-

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा, तुम्हहि लागि धरिहऊँ नर वेषा।

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा, लेहऊँ दिनकर बंश उदारा।।

दूसरी वह कथा, जिसे केवल राम जानते हैं; शेष त्रिगुणात्मिका प्रकृति से जकड़े हुए हैं, इसलिए वे विभिन्न भावावस्थाओं से प्रभावित होते हैं-

अवधपुरी प्रभु आवत जानी, भई सकल शोभा कै खानी।

बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा, भइ सरजू अति निर्मल नीरा।।

अतः अवतारवाद और कर्मचक्र का संबंध उतना ही नित्य है, जितना नित्य कर्ता और कर्म का संबंध है। गीता के अनुसार कर्म अनित्य है और मूल में परब्रह्म की लीला है। परमेश्वर जब जीव रूप में अपने आपको अपनी प्रकृति के अधीन कर देता है, तो ऐसा वह अपनी इच्छा से करता है, किसी दूसरी शक्ति से विवश होकर नहीं। जीव रूप में उसके अधीन होने का अर्थ है अपने एक अंग को कुछ समय के लिए प्रधान बना देना और दूसरे को अप्रधान। श्रीराम ने भी यही किया। मानस में हमें कभी उनका मनुष्य रूप मिलता है और कभी ईश्वरीय रूप।

सन्दर्भ :

1. तुलसीदास, रामचरितमानस, गीता प्रेस, गोरखपुर।
2. वेदव्यास, भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर।